उसे अब समष्टि के संगीत से कोई सरोकार नहीं रहा है। अत: हमें प्रयास करना चाहिए कि हम जहाँ भी रहें और जैसे भी रहे किंतु अपने घर, परिवार, समाज, राष्ट्र और वहाँ की संस्कृति की महक सदैव अपने दिल में बसाये रखें। हमारे आसपास रहे वट-पीपल पर बैठे पक्षियों की मधुर कलरव को दिलोदिमाग में रखें। शायद इसी में हमारा कल्याण है। शायद परम्परा और आधुनिकता दोनों मिलकर ही एक राजमार्ग बना सकती है जिस पर आज के जीवन की गाड़ी निर्बाध रूप से गतिमान हो सकती है।

'समवेत' का यह अंक परम्परा और आधुनिकता के मेल को दर्शाता है। यहाँ गौरी पूजन की सुदीर्घ परम्परा का स्मरण है तो वहीं संतों की वाणियों का भी स्मरण है। संस्कृत के रूपकों पर विचार है तो भवानीप्रसाद मिश्र और नरेश मेहता के काव्य के सहारे आधुनिक काव्य को समझने का प्रयास है तो समकालीन साहित्य की विविध अवधारणाओं यथा- स्त्री एवं आदिवासी विमर्श पर बात करते हुए 'अंतिम अरण्य' के सहारे पाश्चात्य सभ्यता के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है तो विशिष्ट बालकों की शिक्षा पर भी यहाँ विचार-मंथन किया गया है। कुल मिलाकर यह अंक दुनिया बदलने की जिद रखते हुए 'ज़िद करो दुनिया बदलो' का भी संदेश देता है। इस संकलन के आलेख परम्परा और आधुनिकता के समन्वय को दर्शाते हैं।

मैं 'समवेत' के इस अंक के आलेख लेखकों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिनके अकादमिक सहयोग से यह अंक प्रकाशित हो पाया है। आलेखों की समीक्षा और मूल्यांकन करने वाले उन सहयोगी वरिष्ठ जनों व मित्रों का भी आभार जिनके सहयोग के बिना इस अंक प्रकाशन संभव नहीं था। आवरण सहयोग के लिए डॉ. दीपिका माली, सहायक आचार्य, दृश्य कला विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय का भी आभार। इस अंक के विज्ञापन सहयोगदाताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। आशा है वरिष्ठ जनों और मित्रों का आशीर्वाद और सहयोग हमें निरंतर मिलता रहेगा। इसी कामना के साथ ......

नववर्ष 2019 की हार्दिक शुभकामनाएँ।

आपका

**डॉ. नवीन नन्दवाना**

संपादक

# अनुक्रम


1. भवानीप्रसाद मिश्र : प्रकृति-जीवन के अक्षय स्रोतों से पगी कविताएँ 1
   प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा
2. 'अंतिम अरण्य' में चित्रित पाश्चात्य सभ्यता 10
   डॉ. बी. संतोषी कुमारी
3. विशिष्ट बालकों की शिक्षा 23
   दीपिका शर्मा
4. संस्कृत के रूपकों में चित्रकला 29
   डॉ. जी. एल. पाटीदार
5. स्त्री विमर्श का सैद्धांतिक पक्ष और समकालीन हिंदी आलोचना 34
   डॉ. ज्योति शर्मा
6. दुनिया को बदलने की ज़िद : ज़िद करो दुनिया बदलो 42
   नीना यादव
7. अपने समय, समाज और इतिहास से बाखबर जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ 52
   डॉ. वन्दना झा
8. गौरी पूजन की सुदीर्घ परम्परा 59
   वनिता वागरेचा
9. मानव सभ्यता के समक्ष चुनौतियाँ और नरेश मेहता का काव्य 65
   प्रो. सुरेश चन्द्र
10. इंसानी चुनौतियाँ और असगर का नाटक साहित्य 72
    भागीरथ कुलदीप
11. संत साहित्य में चित्रित नारी दृष्टि 81 – 88
    डॉ. नवीन नन्दवाना


212

होता, खिलता नजर आता है। जहाँ एक बेहतर दुनियाँ के स्वप्न को साकार किया जा सके और बचाया जा सके संवेदनहीन होते मनुष्य को, उसकी कल्पनाओं को, उसकी सृजन-शक्ति को। जिससे वह आत्म-शक्ति के साथ लड़ सके तमाम तरह की इंसानी बुराइयों के खिलाफ और बचा सके इंसानियत को।

## संदर्भ सूची

1. असगर वजाहत : *मुश्किल काम*, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृष्ठ 8
2. असगर वजाहत : *पाकिस्तान का मतलब क्या*, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012, पृष्ठ 19
3. वही, पृष्ठ 19
4. असगर वजाहत : *आठ नाटक*, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2014, पृष्ठ 18
5. वही, पृष्ठ 180
6. वही, पृष्ठ 175
7. वही, पृष्ठ 196
8. वही, पृष्ठ 171
9. अनिल कुमार : 'मैं हिन्दू हूँ कहानी संग्रह में सामाजिक चेतना', *चिंतन रिसर्च जर्नल*, आचार्य अकादमी, चुलिवना, रोहतक, जनवरी-मार्च, 2014, पृष्ठ 102
10. वही, पृष्ठ 293

□□□

# संत साहित्य में चित्रित नारी दृष्टि

डॉ. नवीन नन्दवाना*

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल जिसे भक्तिकाल (1318-1643 ई.) के नाम से जाना जाता है, वह अपनी साहित्यिक श्रेष्ठता के कारण स्वर्ण युग की संज्ञा से विभूषित किया गया। इस काल में कबीर, नानक, दादू और रैदास आदि संतों ने अपनी वाणियों के माध्यम से भक्ति के साथ-साथ समाज सुधार की चेतना फैलायी; वहीं दूसरी ओर सूफी कवियों ने प्रेम तत्त्व के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया। राम भक्ति धारा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास ने समन्वय एवं लोकमंगल का संदेश दिया तो सूरदास की अनन्य कृष्ण भक्ति भी लोक प्रसिद्ध है। इस प्रकार इस कालखंड में विविध माध्यमों द्वारा भक्ति की प्रतिष्ठा के व्यापक प्रयास किए गए। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि- "भक्ति-काव्य हिन्दी समाज की उदारतम चेतना का दस्तावेज है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं, यह मान्यता सर्व स्वीकृत है। इसका निहितार्थ है कि यहाँ हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-दलित, पुरुष-स्त्री, समाज के सभी वर्गों का एक साझा रचना कर्म है, भले वे वर्ग सामान्य तौर पर समाज में अपना अलगाव बनाए रखते हों।... भक्ति काव्य वस्तुतः हिन्दी समाज की अनेक रूढ़ियों के बावजूद उसकी प्रबल जीवनी शक्ति का गतिशील और उज्ज्वल साक्ष्य है।"[1]

हिन्दी साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्यकाल की प्रधान प्रवृत्ति भक्ति होने के कारण इस कालखंड को भक्तिकाल (1318-1643 ई.) की संज्ञा प्रदान की गई।

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान) 313001

'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है- भजना। "नारद के अनुसार वह 'परमप्रेमरूपा' और 'अमृत स्वरूपा' है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।... पाराशर पुत्र व्यास पूजादि में अनुराग तथा गर्ग कथादि में अनुरक्ति को भक्ति कहते हैं।"[12]

भक्ति मार्ग के साधकों के लिए 'संत' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। 'संत' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थों में कई शब्दों के लिए होता है। परशुराम चतुर्वेदी इस विषय में लिखते हैं कि "'संत' शब्द का प्रयोग प्रायः बुद्धिमान ('सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ : पर प्रत्ययनेय बुद्धिः'-कालिदास), पवित्रात्मा ('प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयंहि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः।' भागवत, स्कं.-1 अं. 19, श्लोक-8), सज्जन ('बंदों संत असज्जन चरणा। दुखप्रद उभय बीच कछु बरणा'- रामचरित मानस), परोपकारी ('सन्तः स्वयं परहिते विहिता भियोगा:'-भर्तृहरि) या सदाचारी ('आचारलक्षणां धर्मः, सन्तश्चाचारलक्षणाः।' महाभारत) व्यक्ति के लिए किया गया मिलता है, और कभी-कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु व महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझ लिया जाता है। किंतु कुछ लोग इसे 'शांत' शब्द का रूपांतर होना ठहराते हैं और कहते हैं कि उस विचार से इसका अभिप्राय 'शं सुखं ब्रह्मानन्दात्मकं विद्यते अस्य के अनुसार 'ब्रह्मानंद सम्पन्न व्यक्ति' होना चाहिए। बौद्धों के पालिभाषा में लिखित प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'धम्मपद' में भी यह शब्द कई स्थलों पर 'शांत' के अर्थ में ही प्रयुक्त दीख पड़ता है।"[13] वहीं कुछ विद्वान इसे 'सन्ति' या 'सन्त्य' से जोड़ते हुए 'फलदाताओं' में श्रेष्ठ मानते हैं तो कुछ इसका अर्थ 'लोकानुग्रहकारी' भी सिद्ध करते हैं।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में विभिन्न साधकों ने ईश्वर की आराधना के लिए भक्ति काव्य की रचना की। संत शब्द धीरे-धीरे निर्गुण साधकों के लिए रूढ़ होता गया और वर्षों से यह कबीर आदि निर्गुण साधकों के लिए प्रयुक्त होने लगा। डॉ. परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि- "संत शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से, केवल उन भक्तों के लिए ही होने लगा था जो विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ व तुकाराम जैसे भक्तों के नाम लिये जाते हैं, जो सभी महाराष्ट्र प्रांत से संबंध रखते थे। 'संत' शब्द उनके लिए, क्रमशः रूढ़ि-सा हो गया था और कदाचित अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण, उत्तरी भारत के कबीर साहब तथा अन्य ऐसे लोगों का भी पीछे वही नामकरण हो गया।"[14]



संत साहित्य में नारी विषयक वर्णन अल्प रूप से वर्णित है। संतों की चेतना आध्यात्मिक जगत से जुड़ी थी, अतः उनका सारा ध्यान ईश्वर की आराधना में रहा। नारी को लेकर संतों की लेखनी विशेष रूप से नहीं चली। अधिकतर संतों ने नारी के दो रूपों का वर्णन किया पहला कामिनी रूप और दूसरा सती रूप। सभी संतों ने प्रथम रूप को त्याज्य बताते हुए उसका विरोध किया। उनका मानना था कि नारी का यह रूप ईश्वर प्राप्ति में बाधक है। स्वयं कबीर ने कहा था-

"नारी का झाँई परै, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिन की कौन गति, जै नित नारी संग।।"[15]

इसी प्रकार पतिव्रता या सती रूप नारी की संतों ने प्रशंसा की है। कबीर इस संबंध में इस प्रकार वर्णित करते हैं -

"जो पै पतिव्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहो सो पियहि पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा।"[16]

पतिव्रता के स्वरूप पर तो वे कोटि स्वरूप को निछावर कर सकते हैं -

"पतिबरता मैली भली, काली, कुचिल, कुरूप।
पतिबरता के रूप पर बारौं कोटि स्वरूप।।"[17]

संतों ने अपने साहित्य में कनक-कामिनी की घोर निंदा की। उनका मानना था कि कनक तथा नारी का कामी रूप ईश्वर की प्राप्ति में बाधक हैं। कबीर कहते हैं कि-

"एक कनक अरु कॉमनी, विष फल किए उपाइ।
देखैं ही थे विष चढ़ै, खाँये सू मरि जाइ।।
एक कनक अरु काँमिनी, दोउ अगनि की झाल।
देखे ही तन प्रजलै, परस्याँ है पैमाल।।"[18]

दादू भी संसारी जनों को विषय वासनाओं से दूर रहने का संदेश दे रहे हैं। वे कहते हैं -

"जे नर कामिनी परिहरैं तै छूटे गर्भवास।
दादू ऊंधे मुख नहीं, रहैं निरंजन पास।।"[19]

214

दादूदयाल कहते हैं कि स्त्री का कामिनी रूप विविध रूपों को धारण कर पुरुष को भुलावे में रखता है। वे कहते हैं कि यदि किसी साधक ने योगादि द्वारा अपने मन पर भी नियंत्रण कर लिया हो और अपनी इंद्रियों को भी वश में कर लिया हो तो भी उसे कनक-कामिनी का संग नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये ऐसी मोहक होती हैं कि साधक के मन को पुन: परिवर्तित कर सकती हैं।

दादू आचरण की शुद्धता का संदेश देते हैं। वे कहते हैं कि हमें पराई स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव रखना चाहिए। दादूदयाल कहते हैं -

"पर घर परिहरि आपणी, सब एकै उणहार।
पशु प्रांणी समझै नहीं, दादू मुगध गंवार।।"[10]

कामिनी नारी जो विषयासक्तियों में उलझाती है, उस नारी की तुलना तो दादू सर्पिणी और सिंहनी तक से करते हैं-

"नारी नागणि राकसी, बाघणि बड़ी बलाइ।
दादू जे नर रत भए, तिनका सर्बस खाइ।।
नारी नागणि जे डसे, ते नर मुए निदान।
दादू को जीवै नहीं, पूछो सवे सयान।।"[11]

दादूदयाल को लगता है कि कामिनी नारी की ओर हमारा जरा भी ध्यान नहीं जाना चाहिए। साधक को कामिनी नारी की ओर देखना नहीं चाहिए और न ही अपने मुख पर उसका नाम आने देना चाहिए। उसे तो नारी को माता रूप से स्वीकारना चाहिए। कामिनी नारी के मोह से बचना कठिन है। संत सुंदरदास भी ऐसी नारी की तुलना राक्षसी से करते हैं-

"कामिनी की देह मानौं कहिये सघन बन
उहाँ कोऊ जाइ सु तौ भूलि कैं परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामैं।
बेनी काली नागनीऊ फन को धरतु है।
कुच है पहार जहाँ कामचोर रहै वहां।
साधिकै कटाक्ष बान प्रान को हरतु है।।
सुंदर कहत एक और डर जा में अति तामै।
राच्छसी बदन खाँऊ खाँऊ ही करतु है।।"[12]



हजारीप्रसाद द्विवेदी पतिव्रता नारी विषयक संत कबीर मत का इस प्रकार वर्णन करते हैं- "कबीरदास भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है। दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनों के सामने प्रलोभन का दुस्तर जंजाल है, दोनों ही कांचन-धर्मी हैं बाहर से मृदु भीतर से कठोर (बाहर से कोमल, भीतर से परुष) सब की सेवा में व्यस्त पर एक ही आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।"[13]

संत मलूकदास जी ने तो नारी को मिसरी की छुरी तक कहा है। वे इस कामिनी रूप को भजन में विघ्न डालने वाला मानते हैं-

"एक कनक और कामिनी, यह दोनों बटमार।
मिसरी की छुरी गर लाय के, इन मारा सब संसार।।"[14]

दादूदयाल भी कहते हैं कि कामिनी नारी सर्पिणी के समान होती है। वह हृदय में इस प्रकार बैठ जाती है कि कोटि प्रयासों के बाद भी उसे बाहर निकालना संभव नहीं है-

"सुंदरि खाये साँपिणी केते इहिं कलि मांहि।
आदि अंत इन सब डसे, दादू चेते नांहि।।
दादू पैठे में, नारी नागिण होय।
दादू प्राणी सब डसे, काढ़ सके ना कोय।।"[15]

"कबीर नारी को साधना के मार्ग में बाधक मानकर उसकी निंदा करते हैं, उससे बचने की सलाह देते हैं लेकिन भक्ति के प्रगाढ़ क्षणों में भगवान से एकात्म होने के लिए विरहिणी नारी का रूप भी धारण करते हैं।"[16]

मध्यकालीन समाज में स्थितियाँ बड़ी त्रासद थीं। उस समाज में विलासिता और कामुकता बढ़ रही थी। समाज पतन की ओर जा रहा था। ऐसी स्थितियाँ संतों को पीड़ाकारी लगती थीं। अत: इनका ध्यान कनक-कामिनी की निंदा की ओर गया। वैसे ये संत पतिव्रता स्त्री का बड़ा सम्मान करते थे। दादू कहते हैं कि -

"पतिव्रता गृह आपने, करै खसम की सेव।
ज्यों राखे त्यों ही रहे, आज्ञाकारी टेव।।"[17]

दादू आगे इसे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि

दादू पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिणी के दोय।
पतिव्रता व्यभिचारिणी, मेला क्यों कर होय।।
पतिव्रता के एक है, दूजा नाहीं आन।
व्यभिचारिणी के दोय है; पर घर एक समान।।"[18]

दादू तो उस पतिव्रता की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं जो कि हर समय अपने पति की सेवा में लगी रहती है, जो पति को त्याग कर अन्यत्र नहीं जातीं-

"पतिव्रता पति पीव कौं, सेवै दिन अरु रात।
दादू पति कूँ छाड़ि करि, काहू संगि न जात।।"[19]

दादू कहते हैं कि कामुक नारी एवं पुरुष दोनों एक-दूसरे के परस्पर बैरी हैं। अंतकाल में दोनों इस संसार सागर में ही डूब मरते हैं। वे विषयासक्तियो में फँसे मनुष्य की हालत कुछ इस प्रकार वर्णित करते हैं-

"दादू पुरिया पासी हाथि करि, कामणि के गलि वाहि।
कामणी कटारी कर गहे, मारि पुरिष कौ पाइ।।"[20]

संत कबीर ने तो नारी के इस कामी रूप की तुलना नरक के कुंड तक से कर दी है। वे कहते हैं -

"नारी कुंड नरक का, विरला थंभै बाग।
कोई साधूजन ऊवरे, सब जग मूवा लाग।।"[21]

कबीर की दृष्टि में सुंदर स्त्री की अपेक्षा शूली ज्यादा ठीक है -

"सुंदरि थै सूली भली, विरला वंचै कोई।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि-बलि कोइला होइ।।"[22]



मध्यकालीन जीवन में परस्त्री-गमन या परस्त्री को बुरी दृष्टि से देखने के उदाहरण भी मिल जाते हैं। संतों को ये स्थितियाँ जहर के घूँट के समान लगती थीं। इसलिए वे किसी पराई स्त्री को बुरी नजर से देखने का भी विरोध करते थे -

"परनारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।
खातां मीठी खांड-सी, अंत कालि विष होइ।।
परनारी के राचणैं, औगुण है गुण नाहिं।
षार समुंद में माछली, केता बहि-बहि जांहि।।"[23]

इस प्रकार संतों ने चित्त की शुद्धता, आचरण की निर्मलता को महत्ता प्रदान की। संत दादूदयाल तो सच्चे साधक को जीवन का संदेश इस प्रकार देते हैं -

"नारी नेह न कीजिये, जे तुझ राम पियारा।
माया मोह न बंधिये, तजिये संसारा।।
विषिया संगि राचे नहीं, नहिं करै पसारा।
देह गेह परिवार में, सब थैं रहे न्यारा।।
आपा पर उरझै नहीं, नाहीं मैं मेरा
मनसा वाचा कर्मना; साँई सब तेरा।।"[24]

इस प्रकार संत दादूदयाल ने नारी की निंदा की और उसे ईश्वर प्राप्ति में बाधक भी बताया किंतु इसका अभिप्राय यही कदापि नहीं कि वे सत्यरूपा, पतिव्रता और सद् रूपानारी के विरोधी रहे हों। वे तो विषय वासनाओं में उलझाने वाले नारी के कामिनी रूप की निंदा करते थे। उन्होंने कामिनी, भामिनी और मोहिनी नारी की निंदा की और उसे त्याज्य बताया है। इतना कहा जा सकता है कि संतों के साहित्य में मिलने वाली नारी निंदा की प्रवृत्ति बहुत कुछ तत्कालीन समय की ही देन है।

## संदर्भ सूची

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी : *भक्ति काव्य-यात्रा*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृष्ठ 09
2. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : सं. *हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1*, ज्ञानमंडल वाराणसी, 2000, पृष्ठ 441
3. परशुराम चतुर्वेदी : *उत्तरी भारत की संत परम्परा*, भारती भंडार, प्रयाग, सं. 2008, पृष्ठ 3
4. वही, पृष्ठ 7

216

5. डॉ. लक्ष्मी नारायण चातक : *हिन्दी साहित्य की अभिनव इतिहास*, पिंक सिटी पब्लिशर्स, जयपुर, 1998-99, पृष्ठ 64
6. रामकिशोर शर्मा : सं. *कबीर ग्रंथावली*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 37
7. डॉ रामसजन पांडेय : *निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका*, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 124
8. रामकिशोर शर्मा : सं. *कबीर ग्रंथावली*, कामीनर कौ अंग, 19/11-12, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 216
9. स्वामी नारायण दास : *टी. श्री दादू वाणी*, माया का अंग, 12/105, श्रीदादू दयालु महासभा, जयपुर, नवम संस्करण, पृष्ठ 248
10. परशुराम चतुर्वेदी : सं. *दादूदयाल*, माया कौ अंग 12/115, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सं. 2023, पृष्ठ 141
11. वही, 12/150- 151, पृष्ठ 144
12. सुंदरदास : सुंदर*विलास*, नारी निंदा कौ अंग, पद-1, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 46-47
13. हजारीप्रसाद द्विवेदी : *कबीर*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 161
14. मलूकदास : *मलूकदास जी की बानी*, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ 11
15. डॉ. बलदेव बंशी : सं. *दादू ग्रंथावली*, माया को अंग, 12/159-160, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 108
16. अवधेश प्रधान : 'देशज आधुनिकता...' (लेख), *आलोचना*, जुलाई-सितम्बर, 2012, पृष्ठ 69
17. डॉ. बलदेव वंशी : सं. *दादू ग्रंथावली*, अथ निहकर्मी पतिव्रता का अंग, 8/35, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 77
18. वही, अथ निहकर्मी पतिव्रता का अंग, 8/55-56, पृष्ठ 79
19. दादूदयाल : *दादू दयाल की बानी*, भाग-1, सूरा तन को अंग, 24/58, वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 206
20. परशुराम चतुर्वेदी : सं. *दादूदयाल*, माया कौ अंग, 12/160, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सं. 2023, पृष्ठ 146
21. रामकिशोर शर्मा : सं. *कबीर ग्रंथावली*, कामी नर को अंग, 19/15, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 217
22. वही, पृष्ठ 217
23. वही, 19/4-5, पृष्ठ 215
24. परशुराम चतुर्वेदी : सं. *दादूदयाल*, राग गुंड, 19/17, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2023, पृष्ठ 452

□□□